दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

निर्णय की तिथि: 30.01.2025

<u>नि.प्र.अ. 229/2023 व सि.वि.आ. 13493/2023</u>

<u>[RFA 229/2023 & CM APPl. 13493/2023]</u>

सिम्मी वालिया .....अपीलार्थी

द्वारा: सुश्री ज्ञान मित्रा, अधिवक्ता।

बनाम

राकेश अरोड़ा .....प्रत्यर्थी

द्वारा: श्री हरीश मल्होत्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता सह श्री सुनील आहूजा, अधिवक्ता।

कोरमः विद्वान न्यायमूर्ति श्री गिरीश कठपालिया

<u>निर्णय</u> (मौखिक)

1. अपीलार्थी ने दिनांक 04.01.2023 को सि.प्र.सं. आदेश XII नियम 6 के अंतर्गत विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, शाहदरा, कड़कड़डूमा न्यायालय, दिल्ली द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री को चुनौती दी है, जिसके द्वारा अपीलार्थी किरायेदार को अभिवाकों में की गई स्वीकारोक्ति के आधार पर किराए पर ली गई संपत्ति का कब्जा प्रत्यर्थी मकान मालिक को बहाल करने का निर्देश दिया गया। प्रत्यर्थी मकान मालिक अधिवक्ता द्वारा पेश हुआ है। मैंने दोनों पक्षों के

विद्वान अधिवक्तागण को सुना है और विचारण न्यायालय के डिजिटाइज किए गए अभिलेख की जांच की है।

2. वर्तमान प्रत्यर्थी ने संपत्ति संख्या 162, राम विहार, दिल्ली की तृतीय मंज़िल के कब्जे की पुनः प्राप्ति हेतु, साथ ही स्थायी व्यादेश तथा ब्याज सहित बकाया किराए और अंत:कालीन लाभों की वसूली के लिए वाद दायर किया था। अपने वादपत्र में वर्तमान प्रत्यर्थी ने यह निवेदन किया कि अपीलार्थी को संपत्ति संख्या 162, राम विहार, दिल्ली की तृतीय मंज़िल पर दो शयनकक्ष, ड्राइंग-कम-डाइनिंग रूम, एक रसोईघर, शौचालय/स्नानघर तथा बालकनी के संबंध में दिनांकित 22.08.2019 की पंजीकृत पट्टा विलेख के आधार पर किरायेदार के रूप में स्थापित किया गया था, जिसका किराया ₹34,000/- प्रति माह अन्य शुल्कों को छोड़कर निर्धारित था; कि किरायेदारी समयावधि समाप्त होने पर दिनांक 20.07.2020 को समाप्त हो गई, किन्तु कोविड महामारी के कारण अपीलार्थी के अनुरोध पर उसे दिनांक 20.01.2021 तक उक्त संपत्ति खाली करने के लिए अधिक समय दिया गया; कि अपीलार्थी ने दिनांक 20.01.2021 तक किराया अदा किया, परंतु उसके बाद न तो कोई किराया दिया और न ही संपत्ति खाली की, यद्यपि प्रत्यर्थी द्वारा बार-बार अनुरोध किया गया; अतः किसी तकनीकी पहलू से बचने हेतु, यद्यपि पट्टा समयावधि समाप्त होने के कारण स्वतः समाप्त हो चुका था, प्रत्यर्थी ने दिनांक 26.03.2021 को खाली करने का नोटिस जारी किया, जिसके द्वारा किरायेदारी को दिनांक

20.04.2021 की मध्यरात्रि से समाप्त कर दिया गया; जिस पर अपीलार्थी ने दिनांक 31.03.2021 को उत्तर भेजा और संपत्ति खाली करने से इनकार कर दिया।

3. अपीलार्थी ने अपने लिखित बयान में पक्षकारों के बीच किरायेदारी संबंध को स्वीकार किया और अभिवाक प्रस्तुत किया कि उसने ₹5,00,000/- नकद राशि अदा करने के पश्चात्, पक्षकारों के बीच मौखिक रूप से यह सहमति बनी कि किराए की दर ₹34,000/- प्रति माह से घटाकर ₹24,000/- प्रति माह कर दी जाए, जो दिनांक 01.03.2021 से प्रभावी हो। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी ने वाद का विरोध करते हुए अभिवाक किया कि पंजीकृत पट्टा विलेख के अनुसार किराए पर दी गई संपत्ति मकान संख्या 162, राम विहार, दिल्ली की कि तृतीय मंज़िल न होकर शीर्ष मंज़िल थी।

4. विपरीत अभिवाकों के आधार पर, वर्तमान प्रत्यर्थी ने सि.प्र.सं. के आदेश 12 नियम 6 के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र दाखिल किया, जिस पर अपीलार्थी ने उत्तर दाखिल किया और अपने लिखित बयान में लिए गए पक्ष को पुनः दोहराया। दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, विद्वान विचारण न्यायालय ने सि.प्र.सं. आदेश 12 नियम 6 के अंतर्गत दायर प्रार्थना पत्र को स्वीकार कर लिया और प्रत्यर्थी मकान मालिक को उक्त संपत्ति का कब्जा बहाल करने का निर्देश दिया है।

5. अतः, वर्तमान अपील दायर की गई।

6. आज की बहस के दौरान, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पट्टा विलेख में उल्लिखित शीर्ष मंज़िल वास्तव में मकान संख्या 162, राम विहार, दिल्ली की तृतीय मंज़िल न होकर चौथी मंज़िल थी। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि चूँकि वादपत्र के साथ दाखिल किया गया साइट प्लान शीर्ष मंज़िल का था, खाली करने का नोटिस भी शीर्ष मंज़िल से संबंधित था और पट्टा विलेख भी शीर्ष मंज़िल का ही था, अतः यह निर्विवाद स्वीकारोक्ति का मामला नहीं है। इसलिए विचारण न्यायालय को वाद को पूर्ण, विस्तृत और अंतिम विचारण के माध्यम से चलाना चाहिए था, न कि केवल स्वीकारोक्ति के आधार पर निर्णय लिखना चाहिए था। विशेष प्रश्न के उत्तर में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने स्वीकार किया कि अपीलार्थी का कब्जा चौथी मंज़िल पर नही है उसका कब्जा केवल तृतीय मंज़िल पर है।

7. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अभिलेखों, जिसमें संशोधित वादपत्र भी सम्मिलित है, का अवलोकन कराते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि पक्षकारों की सदैव यह धारणा रही कि तृतीय मंज़िल ही शीर्ष मंज़िल है, क्योंकि चौथी मंज़िल पूर्ण रूप से निर्मित नहीं है। इस संदर्भ में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने स्वयं अपीलार्थी द्वारा निष्कासन नोटिस के उत्तर का भी उल्लेख किया।

8. सुविधा हेतु, सि.प्र.सं. के आदेश 12 नियम 6 के अंतर्गत प्रावधान को नीचे उद्धृत किया गया है :-

> **"6. *स्वीकारोक्ति पर निर्णय*–***(1) जहाँ तथ्यों की स्वीकारोक्ति या तो अभिवाकों में या अन्यथा, मौखिक अथवा लिखित रूप में की गई हो, वहाँ न्यायालय वाद के किसी भी चरण में, किसी पक्षकार के आवेदन पर अथवा स्वप्रेरणा से, और पक्षकारों के बीच अन्य किसी प्रश्न के निर्धारण की प्रतीक्षा किए बिना, ऐसी स्वीकारोक्ति को ध्यान में रखते हुए, उपयुक्त आदेश पारित कर सकता है अथवा निर्णय दे सकता है।***
>
> ***(2) जब भी उप-नियम (1) के अंतर्गत कोई निर्णय सुनाया जाता है, उस निर्णय के अनुसार एक डिक्री तैयार की जाएगी और उस डिक्री पर वही तिथि अंकित होगी जिस दिन निर्णय सुनाया गया था।***

8.1 कोई भी विधि किसी वादी से यह अपेक्षा नहीं करती कि वह लंबी-लंबी सुनवाइयों और मुकदमों की जटिलताओं से गुज़रे, जहां प्रासंगिक पहलुओं पर कोई विवाद ही न हो। जहाँ प्रतिवादी वादी के दावे को पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से विवादित नहीं करता, वहाँ वादी को संपूर्ण विचारण से गुजारना न्याय वितरण प्रणाली के लिए प्रतिकूल सिद्ध होगा। जहाँ प्रतिवादी वादी द्वारा उठाए गए दावे को पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से स्वीकार करता है, वहाँ न्यायालय के लिए यह उचित और न्यायसंगत होगा कि वह स्वीकारोक्ति की सीमा तक वादी के दावे को मान्यता प्रदान करे। आदेश XII नियम 6 सि.प्र.सं. के अंतर्गत प्रावधान इस उद्देश्य से अधिनियमित किए गए थे कि जहाँ कोई विवाद न हो, वहाँ पक्षकारों को शीघ्र निर्णय प्रदान किया जा सके। पूर्व में, आदेश XII नियम 6 सि.प्र.सं. के अंतर्गत प्रावधान यह था कि वाद की किसी भी अवस्था में, जहाँ तथ्यों की स्वीकारोक्ति अभिवाकों में अथवा अन्यथा की गई हो, कोई भी पक्षकार

न्यायालय से ऐसी स्वीकारोक्ति के आधार पर वह निर्णय या आदेश प्राप्त करने हेतु आवेदन कर सकता है, जिसका वह अधिकारी हो, और न्यायालय पक्षकारों के बीच अन्य किसी प्रश्न के निर्धारण की प्रतीक्षा किए बिना, ऐसे आवेदन पर न्यायसंगत समझे जाने वाला आदेश या निर्णय पारित कर सकता है। भारत के विधि आयोग ने अपनी 54वीं रिपोर्ट में उक्त प्रावधान में संशोधन का सुझाव दिया, ताकि न्यायालय न केवल किसी पक्षकार के आवेदन पर बल्कि स्वप्रेरणा से भी निर्णय दे सके। तद्नुसार, न्यायाधीशों को इसे न्याय के कारण (*ex debito justitiae*) के रूप में प्रयोग करने का अधिकार प्रदान कर न्याय के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने और प्रावधान के क्षेत्र को विस्तृत करने के लिए उक्त प्रावधान में संशोधन किया गया। आदेश XII नियम 6 सि.प्र.सं. के वर्तमान स्वरूप को पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि उपयुक्त मामले में, प्रतिद्वंद्वी पक्ष की स्वीकारोक्ति के आधार पर वाद का कोई पक्षकार विधिक अधिकार के रूप में निर्णय प्राप्त करने का आग्रह कर सकता है। तथापि, निर्णय सुनाने के विषय में न्यायालय सदैव अपना विवेकाधिकार सुरक्षित रखता है। आदेश XII नियम 6 सि.प्र.सं. में प्रयुक्त 'तथ्य की स्वीकारोक्ति' तथा 'अभिवाक में अथवा अन्यथा, मौखिक या लिखित रूप में' जैसे अभिव्यक्तियाँ इस प्रावधान के व्यापक क्षेत्र को दर्शाती हैं, इस सीमा तक कि संबंधित स्वीकारोक्ति मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से भी अनुमानित की जा सकती है।

8.2 इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने ***भारतीय इंडस्ट्रीज लि. बनाम राजीव सलूजा***, 112 (2004) DLT 82 DB के मामले में, विद्वान एकल न्यायाधीश के

उस निर्णय को बरकरार रखा, जिसके द्वारा मकान-मालिक और किरायेदार के संबंध, समयावधि समाप्त होने से किरायेदारी की समाप्ति अथवा किसी भी स्थिति में विधिवत रूप से प्रतिवादी पर तामील किए गए निष्कासन नोटिस के संबंध में तथ्यात्मक स्वीकारोक्ति को देखते हुए वाद को आदेश XII नियम 6 सि.प्र.सं. के अंतर्गत डिक्री किया गया था।

8.3 ***नेशनल रेडियो एंड इलेक्ट्रॉनिक कंपनी लिमिटेड बनाम मोशन पिक्चर एसोसिएशन***, 122 (2005) DLT 629 DB के मामले में, इस न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने किरायेदारी संबंध, किराए की दर ₹3,500/- प्रति माह से अधिक होना तथा निष्कासन नोटिस प्रतिवादी द्वारा तामील किए जाने के संबंध में तथ्यात्मक स्वीकारोक्ति को देखते हुए विचारण न्यायालय द्वारा आदेश XII नियम 6 सि.प्र.सं. के अंतर्गत पारित डिक्री को बरकरार रखा।

8.4 ***करम कपाही बनाम लाल चंद,*** 168 (2010) DLT 501 SC के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि :-

> *"46 आदेश 12 नियम 6 के पीछे का सिद्धांत वादी को शीघ्र निर्णय प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करना है। "इस नियम के अंतर्गत कोई भी पक्षकार उन प्रतिद्वंद्वी दावों से मुक्त हो सकता है 'जिनमें कोई विवाद नहीं है' [देखें: (1876) 3 चेंस्री डिविजन 637 में पृष्ठ 640 पर थोर्प बनाम हॉल्ड्सवर्थ में लॉर्ड जेसल, मास्टर ऑफ रोल्स की न्यायोक्ति] इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि आदेश 12 नियम 6 का संशोधन 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा किया गया था।*

47. संशोधन से पूर्व नियम इस प्रकार था:- "6. स्वीकारोक्ति पर निर्णय- वाद की किसी भी अवस्था में, जहाँ तथ्यों की स्वीकारोक्ति की गई हो, चाहे अभिवाक में अथवा अन्यथा, कोई भी पक्षकार न्यायालय से ऐसे निर्णय या आदेश के लिए आवेदन कर सकता है, जिसका वह उस स्वीकारोक्ति के आधार पर अधिकारी हो। पक्षकारों के बीच अन्य किसी प्रश्न के निर्धारण की प्रतीक्षा किए बिना न्यायालय ऐसे आवेदन पर वह आदेश या निर्णय पारित कर सकता है, जिसे न्यायालय न्यायसंगत समझे।

48. 54वीं विधि आयोग की रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया था कि संशोधन किया जाए ताकि न्यायालय न केवल किसी पक्षकार के आवेदन पर बल्कि अपनी पहल पर भी निर्णय दे सके। यह स्पष्ट है कि संशोधन न्याय के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने और इन प्रावधानों को व्यापक बनाने के लिए किया गया था, ताकि न्यायाधीश इसे न्याय के कारण (ex debito justitiae) के रूप में प्रयोग करने के लिए सशक्त हो सकें। हमारे विचार में संशोधन का मुख्य उद्देश्य यह है कि उपयुक्त मामले में, यदि एक पक्ष दूसरे पक्ष की स्वीकृति देता है, तो पहला पक्ष कानूनी अधिकार के रूप में निर्णय की मांग कर सकता है। हालाँकि, न्यायालय हमेशा निर्णय सुनाने के मामले में अपना विवेकाधिकार बनाए रखता है।

49. यदि आदेश 12 नियम 1 की तुलना आदेश 12 नियम 6 से की जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आदेश 12 नियम 6 का प्रावधान अधिक व्यापक है, क्योंकि आदेश 12 नियम 1 केवल 'अभिवाक या अन्यथा लिखित रूप में' की गई स्वीकृति तक सीमित है, जबकि आदेश 12 नियम 6 में प्रयुक्त 'या अन्यथा' शब्द का दायरा अधिक व्यापक है, क्योंकि इसमें कहा गया है: 'तथ्य की स्वीकृति..... चाहे

अभिवाक में हो या अन्यथा, मौखिक रूप से या लिखित रूप में'।

50. इस प्रावधान की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय ने यह माना कि इस नियम के अंतर्गत तथ्यों और परिस्थितियों से भी स्वीकृति निकाली जा सकती है [देखें: चरंजीत लाल मेहरा एवं अन्य बनाम कमल सरोज महाजन (श्रीमती) एवं अन्य, (2005) 11 SCC 279, पृष्ठ 285 (पैरा 8)]। प्रश्नोत्तर के उत्तर में की गई स्वीकृतियाँ भी इस नियम के अंतर्गत आती हैं [देखें: मुल्ला की संहिता पर टिप्पणी, 16वाँ संस्करण, खंड II, पृष्ठ 2177]।

51. उत्तम सिंह दुग्गल एंड कंपनी लिमिटेड बनाम यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य, (2000) 7 SCC 120 के मामले में, इस न्यायालय ने इस प्रावधान की व्याख्या करते हुए यह माना कि न्यायालय को इसके अनुप्रयोग को अनुचित रूप से संकीर्ण नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसका उद्देश्य किसी पक्ष को शीघ्र निर्णय प्राप्त करने में सक्षम बनाना है।"

8.5 ***नेशनल टेक्सटाइल कॉरपोरेशन बनाम अश्वल वडेरा,*** 167 (2010) DLT 602 के मामले में, इस न्यायालय ने पुनः यह दोहराया:-

*"17. **यह स्थापित विधि है कि स्वीकृतियाँ दलीलों में स्पष्ट रूप से की जाना आवश्यक नहीं है। यहाँ तक कि रचनात्मक स्वीकृतियों के आधार पर भी न्यायालय वादी के पक्ष में डिक्री पारित कर सकता है।** आदेश XII नियम 6 सि.प्र.सं. के प्रावधानों को लागू करने के लिए, अभिवाकों से बाहर की गई स्वीकृतियों पर भी विचार किया जा सकता है, जैसा कि उक्त प्रावधान में प्रयुक्त 'अन्यथा' शब्द से*

स्पष्ट होता है। [देखें: शिखरचंद बनाम श्रीमती बरी बाई, AIR 1974 MP 75; के. किशोर बनाम इलाहाबाद बैंक, 1997 (41) DRJ 698; उत्तम सिंह दुग्गल बनाम UBI, (2000) 7 SCC 120; राजीव श्रीवास्तव बनाम संजीव तुली, 119 (2005) DLT 202; रमा घई बनाम यूपी स्टेट हैंडलूम कॉर्पोरेशन, 91 (2001) DLT 386 तथा आर.एन. सचदेवा बनाम आर.एल. महाजन चैरिटेबल ट्रस्ट, 1997 (41) DRJ 698]। ऐसी स्वीकृतियाँ उन दस्तावेजों में भी हो सकती हैं जो कार्रवाई शुरू होने से पहले पक्षकारों के बीच लिखे या निष्पादित किए गए हों, या फिर न्यायालय में दर्ज पक्षकारों के बयानों से, जिनमें आदेश X नियम 1 सि.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज बयान भी शामिल हैं। ***दलीलों और दस्तावेज़ों में की गई अस्पष्ट और अनिर्दिष्ट अस्वीकृतियों से भी स्वीकृतियाँ निकाली जा सकती हैं, जो प्रथम दृष्टया न्यायालय को गुमराह करने के उद्देश्य से जानबूझकर की गई प्रतीत होती हैं, या फिर उन विशिष्ट प्रकथनों के प्रति कोई प्रतिवाद न किए जाने से भी ऐसी स्वीकृतियाँ प्राप्त की जा सकती हैं।***

18. यह न्यायिक प्रणाली की एक बड़ी समस्या है कि वाद को लंबा खींचने और विलंबित करने के उद्देश्य से, अक्सर कोई गलत करने वाला वादी तरह-तरह की झूठी और कानूनी रूप से अस्थिर दलीलें प्रस्तुत करता है। ऐसे वादकारियों को न्यायिक प्रक्रिया को अपने कब्ज़े में लेने और न्याय के उद्देश्य को विफल करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। ***जहाँ न्यायालय के लिए यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि प्रतिवादी का बचाव केवल कार्यवाही को लंबा खींचने के उद्देश्य से है, जिससे गलत करने वाले को लाभ और पीड़ित पक्ष को हानि पहुँचती है, वहाँ न्यायालय का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह पीड़ित पक्ष को निरर्थक और महँगे मुकदमे की जटिल प्रक्रिया से बचाए।*** *इसके लिए, न्यायालय को विभिन्न अधिनियमों के अनेक*

प्रावधानों द्वारा व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, जिनमें सबसे प्रभावी प्रावधान आदेश XII नियम 6 है, जिसे आदेश VIII नियम 3 और 4 सि.प्र.सं. के साथ पढ़ा जाता है। खेदजनक रूप से, यद्यपि इन प्रावधानों का न्यायालयों द्वारा न्यायिक प्रक्रिया के लाभ के लिए उपयोग किया गया है, फिर भी इनका सर्वोत्तम स्तर तक उपयोग अभी नहीं हो पाया है। इसलिए, न्यायालय के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह उसमें निहित शक्तियों का प्रयोग करे ताकि न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोका जा सके, विधिक विलंब को कम किया जा सके और पीड़ित पक्ष को लंबे समय तक चलने वाले मुकदमे की कठिनाइयों से बचाया जा सके, जो अक्सर उसके जीवनकाल से भी अधिक लंबा खिंच जाता है और अंततः उसके उत्तराधिकारियों के हिस्से में आ जाता है।

(जोर दिया गया)

9. वर्तमान मामले में लौटते हुए, यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि एक गैर-मुद्दे को मुद्दे के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। यह किसी का भी मामला नहीं है कि अपीलार्थी परिसर संख्या 162, राम विहार, दिल्ली की ऊपरी/चौथी मंज़िल पर कब्ज़े में है। दोनों पक्षों का स्वीकार किया हुआ मामला यही है कि अपीलार्थी उक्त परिसर की केवल तीसरी मंज़िल पर किरायेदार के रूप में कब्ज़े में है।

10. संशोधित वादपत्र के अनुच्छेद 2 (पीडीएफ पृष्ठ 75) में विशेष रूप से यह दलील दी गई है कि अपीलार्थी उक्त परिसर की तीसरी मंज़िल पर किरायेदार है। संशोधित लिखित बयान के संबंधित अनुच्छेद में इस संबंध में कोई अस्वीकृति नहीं की गई है।

11. अतः स्वीकार की गई स्थिति यही है कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी के अधीन किरायेदार था और उक्त किरायेदारी परिसर संख्या 162, राम विहार, दिल्ली की तीसरी मंज़िल से संबंधित थी।

12. इसी प्रकार किराए की दर के संबंध में, प्रत्यर्थी की दलीलें स्पष्ट और विशिष्ट हैं कि किराए की दर ₹34,000/- प्रति माह थी। अपीलार्थी के जवाबी अभिवाक यह हैं कि उक्त किराए की राशि घटाकर ₹24,000/- प्रति माह कर दी गई थी। भले ही अपीलार्थी का यह रुख सही मान लिया जाए, फिर भी पक्षकारों के बीच सहमत किराए की दर ₹3,500/- प्रति माह से अधिक थी, अतः अपीलार्थी को दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम (Delhi Rent Control Act) के अंतर्गत बेदखली से संरक्षण प्राप्त नहीं है।

13. खाली करने के नोटिस के संबंध में, यद्यपि किरायेदारी समय के प्रवाह से समाप्त हो चुकी थी, फिर भी अतिरिक्त सावधानी के तौर पर प्रत्यर्थी ने खाली करने का नोटिस जारी किया, जिसके उत्तर में अपीलार्थी ने पुनः यह कहा कि किराए पर लिया गया परिसर तीसरी मंज़िल है, न कि ऊपरी मंज़िल। इसके अतिरिक्त, अब यह कोई विवादित प्रश्न नहीं रहा कि बेदखली का वाद दायर करना स्वयं में ऐसे मामलों में खाली करने का नोटिस होता है। [संदर्भ: ***एम/एस. जीवन डीज़ल्स एंड इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड बनाम एम/एस. जसबीर सिंह चड्ढा (एचयूएफ) एवं अन्य:*** (2011) 182 DLT 402 और ***गुलशन कुमार बनाम इंदु सोनी:*** 2024:DHC:9327]

14. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, यह मुद्दा कि किराए पर लिया गया परिसर ऊपरी मंज़िल है या तीसरी मंज़िल, वस्तुतः वर्तमान मामले में कोई वास्तविक मुद्दा नहीं है। अभिलेख से यह स्पष्ट है कि दोनों पक्ष हमेशा इस धारणा में थे कि तीसरी मंज़िल ही ऊपरी मंज़िल है, क्योंकि उसके ऊपर की मंज़िल पूरी तरह निर्मित नहीं थी। किसी भी स्थिति में, अपीलार्थी को स्वीकार्य रूप से तीसरी मंज़िल पर ही किरायेदार के रूप में रखा गया था और वह अब भी तीसरी मंज़िल पर ही कब्ज़े में है, न कि तीसरी मंज़िल से ऊपर। इस कारण, स्थल योजना, खाली करने के नोटिस और यहाँ तक कि पट्टा विलेख, में प्रस्तुत विवरण महत्वहीन हो जाते हैं। इन मुद्दों पर पक्षकारों को दीवानी वाद की लंबी-चौड़ी प्रक्रिया से गुज़रने के लिए बाध्य करना न्याय का पूर्णतः उपहास होगा।

15. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, मुझे आक्षेपित निर्णय और डिक्री में कोई त्रुटि नहीं मिलती, अतः इन्हें बरकरार रखा जाता है और वर्तमान अपील तथा लंबित आवेदन खारिज किए जाते हैं।

न्या. गिरीश कठपालिया

30 जनवरी, 2025/*आरवाई*

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*